chapter-5

पंचम् अध्याय

Hansa Mehta Library, The M. S. University of Baroda

पंचम अध्याय

आठवें और नवें दशक के पारिवारिक उपन्यासों के शिल्प

1. भाषा शैली
2. उपन्यास के तत्व
3. कहावतें, मुहावरे, लोकोक्तियाँ
4. भाषा का बदलता स्वरूप
5. संवाद, संवाद के गुण

आज विश्व–साहित्य में उपन्यास का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है, लेकिन इसके साथ ही यह कहना अनुचित न होगा कि आज जीवन के भाव भी बहुत बदल गये हैं और निरन्तर परिवर्तित होते जा रहे हैं। आज सम्भवतः संसार की प्रत्येक समृद्ध भाषा के साहित्यकारों के सामने यह समस्या अत्यंत गंभीर रूप में उपस्थित है कि वे अपनी कृतियों को वर्तमान जीवन के अनुरुप कैसे बनाएँ। निस्संदेह इस प्रयत्न में सफलता प्राप्त करना बड़ी प्रतिभाओं का काम है और अब तक देखा गया है कि ऐसे प्रयत्नों में प्रायः उन्हीं लोगों को सफलता मिलती भी रही है।

उपन्यास के क्षेत्र में जो शिल्प विकास हुआ, और इस विकास के पूर्व उसके शिल्प के क्षेत्र में जो–जो प्रयोग किये गये, उनके मूल में उपर्युक्त प्रेरणा ही थी। वास्तव में शिल्प–विकास में वह प्रयोग ही अपना योग दे सकता है, जो अन्य अनेक गुणों के साथ ही यथार्थ में अपने युग का प्रतिनिधित्व कर सकने की भी सामर्थ्य रखता हो। उपन्यास में शिल्प कला का जो आश्चर्यजनक विकास हुआ है और उसके रूप निर्माण में जो आश्चर्यजनक प्रगति हुई है उसके पीछे महान प्रतिभाओं का योगदान है, जिन्हें अपने युग की समस्याओं का गहन तथा तीखा अनुभव हुआ था। एक औपन्यासिक कृति पूर्ण और समग्र रूप से अपने युग का प्रतिनिधित्व कर सकती है इसके विषय में कोई ऐसे निष्कर्ष नहीं निकाले जा सके, जो अंतिम कहे जा सकते। यह समस्या आज के उपन्यासकारों के सामने जितने गंभीर रूप में उपस्थित हुई है, उतनी संभवतः पहले के उपन्यासकारों के सामने कभी नहीं रही थी। अवश्य ही इसका कारण जन–जीवन विषयक बदली हुई मान्यताएँ है।

आज के उपन्यासों और पूर्ववर्ती उपन्यासों में भारी अंतर मिलता है। आज का उपन्यासकार केवल मनोरंजन और चमत्कार–सृष्टि के लिए ही जमीन–आसमान के कुलाबे नहीं मिला करता। आधुनिक युग में, जब कि मानवीय मूल्यों के विघटन की समस्या गम्भीर रुप में उपस्थित है, उपन्यासकार अपने दायित्व की गहनता को भली भाँति समझता है और यथाशक्ति उसके निर्वाह का प्रयत्न करता है। वह केवल कथा के ही नये रूप शिल्प का आधार देकर विकास की ओर नहीं अग्रसर करता है, वरन् उस विकास के बीच अपने जीवन दर्शन को स्पष्ट करने के लिये भी यथेष्ट अवसर निकाल लेता है।

आज के इस यंत्र युग में मानवीय मूल्यों का विघटन इस युग की प्रमुख समस्याओं में से एक है। इसका एक कारण यह भी है कि आज न केवल जनजीवन के विविध पक्षों से संबंध रखनेवाले दृष्टिकोण और मान्यताएँ परिवर्तित हो गयी हैं वरन् एक ऐसा बिखराव–सा उत्पन्न हो गया है, जिसका कहीं अंत ही नहीं दिखाई देता। इसीलिए साहित्य के क्षेत्र में एक प्रकार की ऐसी अस्त–व्यस्तता सी मिलती है, जिसका संयोजन कठिन जान पड़ता है।

हिन्दी उपन्यास ने अपनी लगभग सौ वर्षो की यात्रा में जो प्रगति की है, वह निराशाजनक नहीं है। अतः हिन्दी उपन्यासों के विकास को तीन–चार युगों में विभक्त किया जा सकता है। विभिन्न युगों में उपन्यास का एक ही रुप नहीं मिलता, बल्कि प्रत्येक युग में उसके नये रूप–शिल्प मिलते हैं। इसका एक कारण यह है कि प्रत्येक युग में अपनी–अपनी समस्याएँ रहती हैं और युग–परिवर्तन के साथ ही साथ उनमें भी परिवर्तन होता रहता है। प्रत्येक युग में कला के नये रूपों का प्रादुर्भाव होता है।

पुराने और नये उपन्यासों में जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंतर दिखायी देता है, वह उसके कथा–शिल्प के क्षेत्र का है। विषय की दृष्टि से उपन्यास में जो परिवर्तन हुआ है, वह है नये मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का।

प्रायः ऐसा कहा जाता है कि आधुनिक युग के उपन्यासों में कथानक का क्रमशः ह्रास हुआ है और होता जा रहा है। आज यह आवश्यक नहीं समझा जाता किसी बड़े या महत्वपूर्ण उपन्यास के लिये कथा का फैलाव भी उतना ही अधिक अथवा जटिल होना चाहिए। आज ऐसे भी अनेक उच्च कोटि के उपन्यास मिल जाएंगे, जिनमें केवल एक सप्ताह, एक दिन, कुछ घंटों या कुछ मिनटों की ही कथा है। औरं इन उपन्यासों में भी अधिक प्रभाव, अधिक मार्मिकता और अधिक तीखापन पाया जाता है।

दूसरा कारण है घटना के स्थान पर द्वंद्व का समावेश। पहले के उपन्यासों में बहुत सी घटनाएँ होती थीं और उनके आधार पर कथा के ढाँचे को खडा किया जाता था। लेकिन आधुनिक उपन्यासों में, कथा या घटनाओं का फैलाव इस सीमा तक करने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। किन्तु उपन्यासों में घटनाओं की कमी के बावजूद अपेक्षाकृत अधिक प्रतिभा और सूक्ष्म दृष्टि सम्पन्नता की आवश्यकता होती है। ऐसे उपन्यास का लेखक तभी सफलता प्राप्त कर पाता है, जब वह बहुत क्षमतावान् हो।

आज का उपन्यासकार उन अनेक बातों को व्यर्थ समझता है, जिनका समावेश अपनी कथा–कृति में करना पूर्ववर्ती उपन्यासकार आवश्यक समझते थे, या उन पर गौरव देते थे। आज के उपन्यासकार के लिए 'अतीत की घटनाओं का महत्व इतना ही है कि उनकी पृष्ठभूमि में ही वह उस जीवन–खण्ड को अधिक प्रभाव पूर्ण ढंग से सामने रख सकता है, जिसे व्यक्त करना उसका प्रमुख उद्देश्य होता है। लेकिन शिल्प की दृष्टि से यह उत्तम होता है कि वे किसी विचारधारा के संदर्भ में उड़ती–उड़ती–सी आएँ और सार की बात प्रकट कर चली जाएँ जिससे वर्तमान के स्वरूप निर्माण का रहस्य प्रकट होता है। कथा–शिल्प के क्षेत्र में घटना विन्यास की दृष्टि से जो विकास हुआ है, उसमें इसका महत्व बहुत अधिक है।

प्राचीन कथा साहित्य में मूल कथा के अतिरिक्त जो अन्य कथाएँ आती थीं, उनका प्रत्यक्ष संबंध प्रायः कथानक के बाह्य रूप से होता था। परन्तु आधुनिक कथा–साहित्य में इस प्रकार की घटनाएँ उस रूप में न आकर एक प्रकार से उसके आन्तरिक पक्ष से सम्बद्ध होकर आती हैं। और किसी मानसिक या आन्तरिक समस्या के किसी उलझाव को खोलती है।

हिन्दी उपन्यास की भावी संभावनाएँ शिल्प की दृष्टि से:

आज के युग में, जब कभी भी किसी साहित्य की भावी सम्भावनाओं की बात की जाती है, तब स्वभावतः ही वर्तमान मानव–जीवन की जटिलताओं की ओर ध्यान जाता है। वास्तव में मनुष्य आज एक ऐसे वैज्ञानिक युग से होकर गुजर रहा है कि वह जन–जीवन की कटुता और यथार्थता की उपेक्षा नहीं कर सकता। जीवन की जटिलताएँ कुछ इस रूप में आजकल मनुष्य के सामने है कि क्षणभर के लिए उसे चिन्तनशील हो जाना चाहिए और यह सोचना चाहिए कि जो परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी हैं, उनका सामना किस प्रकार किया जा सकता है।

वैसे तो हिन्दी के आधुनिक कथा–साहित्य का रचना–काल बहुत थोड़े वर्षों का है। परन्तु इतने कम समय में ही इस साहित्यिक विधा ने जो आश्चर्यजनक प्रगति की है, वह इसकी निरन्तर बढ़ती हुई लोकप्रियता का प्रमाण है। हिन्दी का नया उपन्यास साहित्य कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। एक ओर जहाँ इसमें शिल्प तथा उद्देश्य की दृष्टि से पर्याप्त नवीनता लक्षित होती है, वहाँ दूसरी ओर वह पिछले कुछ समय में स्थापित विभिन्न विचारधाराओं का प्रभाव भी अपने आप में लिये हुए है। नयी स्थापनाओं का प्रभाव उस पर प्रचुर रूप में मिलता है।

''कुछ वर्षो से हिन्दी कथा साहित्य की जो प्रमुख समस्याएँ रही हैं, उनमें से एक यह है कि आलोचकों में उसके प्रति एक विचित्र उदासीनता पायी जाती है। अतः हिन्दी कथा साहित्य इधर जो पर्याप्त उन्नति करने के बाद भी अब मनमाने रास्तों पर भटकता दिखायी पडता है, इसका मुख्य कारण उसके उचित दिशा–निर्देशन का अभाव है।

हिन्दी का नया कथा–साहित्य अपने आप में रूप–गठन सम्बन्धी अनेक विविधताएँ लिये हुए है, परन्तु उसका भली भाँति विवेचन किये हुए बिना यह कह सकना कठिन है कि उसकी महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ क्या हैं। निश्चय ही प्रेमचंद युग में निर्धारित सीमाओं का अतिक्रमण करके वह विकास के मार्ग पर आगे बढ़ चुका है और जहां तक शिल्प–विधि के विकास का प्रश्न है, उसने अवश्य ही प्रगति की है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य नित्य नये मोड़ों पर आकर आगे बढ़ने की चेष्टा करते हुए भी किसी निश्चित मार्ग पर अग्रसर नहीं हो पा रहा है। लेकिन इस प्रकार से किये गये और किये जा रहे अनेक प्रयत्न उपन्यासकारों की क्रियाशीलता के परिचायक और हिन्दी उपन्यास के भावी उन्नत और परिष्कृत रूप का आभास देने वाले हैं।''[1]

शिल्प तथा भाषा शैली:

शिल्प का सम्बंध उपन्यास की कला से है। जैसे एक ही प्रकार की सामग्री से विभिन्न प्रकार एवं डिज़ाइनों की चीजें बन सकती हैं, उसी प्रकार एक ही वस्तु को अनेक अलग–अलग रूप दिये जा सकते हैं। रूपाकार की यह प्रक्रिया शिल्प के अन्तर्गत आती है। वस्तु के प्रस्तुतीकरण का ढंग घटनाओं के क्रम

की निश्चितता, पात्रों एवं घटनाओं का चयन, अधिकारिक या मुख्य कथा के साथ अन्य प्रासंगिक या समान्तर कथाओं का समुचित नियोजन आदि बातें उपन्यास के शिल्प से सम्बंध रखती हैं। अच्छे से अच्छा वस्तु शिल्प के अभाव में दम तोड़ देता है, उसी प्रकार कई बार सामान्य–सी वस्तु शिल्प क्षमता के बल पर निखर उठती है।

शैली की दृष्टि से हम शिल्प को निम्न बिन्दुओं में बाँट सकते हैं:

1. **वर्णनात्मक या ऐतिहासिक शैली:**

उपन्यासों की यह प्राचीनतम और बहुप्रचलित शैली है। परन्तु अब इसमें स्थूल के स्थान पर सूक्ष्मता का आग्रह बढ़ रहा है। पूर्वस्मृति, अन्तर्विवाद, शब्दसहस्मृति आदि शिल्प के नये आयामों का प्रयोग इस शैली में भी बढ़ने लगा है। राग दरबारी, जल टूटता हुआ, अलग–अलग वैतरणी, तमस, आपका बण्टी, यह पथबन्धु था, सूरजमुखी अंधेरे के, मित्रो मरजानी, पचपन खम्भे लाल दीवारें, रुकोगी नहीं राधिका?, छाया मत छूना, कृष्णकली, टेराकोटा आदि उपन्यास इस शैली में लिखे गये हैं। राग दरबारी हिन्दी का प्रथम सम्पूर्णतः व्यंग्यात्मक उपन्यास है, अतः उसके शिल्प एवं भाषिक रचाव में व्यंग्य का स्वर सर्वाधिक रूप में उभरकर आया है। अतः इस वर्णनात्मक विधि में भी नवीन टेक्निकों का प्रयोग अब निरन्तर बढ़ रहा है। इन प्रयोगों ने उपन्यास कला को अनेक महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्रदान की हैं।

2. **आत्मकथात्मक शैली:**

व्यक्ति चरित्र की सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं तथा बारीकियों के लिए यह विधि अत्यन्त उपयोगी है। स्वतंत्रता पूर्व लिखे गये आत्मकथात्मक शैली के उपन्यासों की तुलना में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद में इस शैली में लिखे गये उपन्यासों में काफी अन्तर है। इसमें लेखकों ने ऐसी सूक्ष्म प्रतिक्रियाएँ प्रस्तुत की, ऐसे स्वाभाविक संकेत एवं प्रतीक उपस्थित किए जिससे इन पात्रों का पूर्ण व्यक्तित्व प्रकाश में आता है। यही नहीं, स्वयं कथा कहने वाला पात्र भी अपनी अच्छाइयों–बुराइयों का मार्मिक विश्लेषण करता चलता है। जिससे कि उसका भी व्यक्तित्व समग्र रुप में सामने आता है। इसमें डाक बंगला, अंधेरे बंद कमरे, बैसाखियोंवाली इमारत, तीसरा आदमी, आधा गांव, वे दिन, अमृत और विष आदि महत्वपूर्ण उपन्यास हैं।

3. **पत्रात्मक शैली:**

'चन्द हसीनों के खतूत' जैसी पूर्णतः पत्रात्मक शैली के प्रयोग की कोई महत्वपूर्ण रचना इस युग में उपलब्ध नहीं होती। और जो उपन्यास प्रकाश में आये हैं उनमें इस शैली का आंशिक प्रयोग हुआ है। अंधेरे बंद कमरे, सीमाएँ टूटती हैं, आधा गांव, शहर में घूमता आईना आदि उपन्यासों में इस शैली का प्रयोग हुआ है। अतः आलोच्य उपन्यासों में पत्र शैली के आंशिक प्रयोग हुए हैं। यह कहना उचित ही होगा कि लेखकों ने आवश्यकतानुसार इसका उपयोग करके अपनी शिल्पगत सजगता का साक्ष्य उपस्थित किया है।

4. **डायरी शैली:**

इस शैली के उपन्यासों में सतर्कता की बड़ी आवश्यकता होती है। पात्रों की डायरियाँ नित्य-प्रति के जीवन में लिखी जाने वाली डायरियों के समान ही सहज एवं स्वाभाविक होनी चाहिए। इस दृष्टि से 'अपने-अपने अजनबी' और 'एक और अजनबी' की डायरियाँ अधिक सफल हैं।

5. **चेतना प्रवाह शैली:**

मानव मन की अतल गहराइयों में पहुँचकर उसके सही रूप को पकड़ने की चेष्टा इसमें होती है। एक और अजनबी, सीमाएँ टूटती हैं, टेराकोटा आदि उपन्यासों में इसका आंशिक प्रयोग हुआ है।

6. **प्रतीकात्मकता:**

जल टूटता हुआ, अलग-अलग वैतरणी, राग दरबारी आदि जीवन-चेतना को रुपायित करता है। लेखक कई बार इसके लिए प्रतीकात्मक शीर्षक भी देते हैं। मछली मरी हुई में मरी मछलियाँ लिस्बियन स्त्रियों का प्रतीक है। एक चूहे की मौत में चूहा फाइल का प्रतीक है।

7. **कहानियों की पंचतन्त्रात्मक शैली:**

शैलेष मटियानी कृत किस्सा नर्मदाबेन गगूबाई कुछ हद तक इस शैली के अन्तर्गत आ सकता है। वैसे प्रयोग के नाम पर इस शैली का अंशतः प्रयोग उपन्यासों में किया गया है, किन्तु ऐसी कृतियों की संख्या अल्प ही है।

8. **अन्य विधियाँ:**

उपर्युक्त शिल्प–विधियों के अतिरिक्त अन्य कई विधियों का प्रयोग हुआ है। अमृतलाल नागर कृत 'अमृत और विष' में कहानी–दर–कहानी की टेक्निक को अपनाया गया है। उपन्यास के नायक अरविन्द शंकर एक उपन्यासकार हैं। अतः उनकी कथा के साथ–साथ समान्तर वह कथा भी चल रही है जिसे वे औपन्यासिक रूप प्रदान करने जा रहे हैं।

उपन्यास के निम्नलिखित सात तत्व माने गए हैं:

1. **कथावस्तु** : कथावस्तु उपन्यास का अभिन्न अंग है। ई.एम. फॉस्टर के अनुसार ''वह उपन्यास की रीढ है।''[2] हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों में इसी तत्व का बोलबाला था। उपन्यास की सफलता का आधार कथावस्तु के चयन में भी है। वैसे महान प्रतिभा के धनी अलंकारों के पारस–स्पर्श से सामान्य कथावस्तु भी चमक उठती है। आजकल उपन्यासों में कथावस्तु की क्षीणता दिन–प्रतिदिन बढ़ रही है। देखा जाय तो समुचा संसार पड़ा है। उपन्यासकार कहीं से भी कथावस्तु ले सकता है और उपन्यासकार को चाहिए कि वह संसार की इस खुली किताब से पन्ने के पन्ने उड़ा ले। इससे ज्यादा सामग्री उसे कहीं से नहीं मिल सकती।''[1] इस सम्बंध में प्रेमचन्दजी की यह बात बड़ी विचारणीय है कि ''उपन्यासकार को अपनी सामग्री आले पर रखी हुई पुस्तकों से नहीं, उन मनुष्यों के जीवन से लेनी चाहिए जो उसे नित्य ही चारों तरफ मिलते हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि अधिकांश लोग आँखों से काम नहीं लेते।''[3]

जीवन में नवीनता का अभाव कहीं नहीं रहा है। अतः उपन्यासकार को नये–नये विषय पर कथावस्तु का निर्माण करना चाहिए।

2. **कथानक (प्लॉट):** जिस तरह किसी बिल्डींग या इमारत के निर्माण में पत्थर, ईंट, गारा, चूना, सीमेन्ट आदि कई पदार्थों की आवश्यकता रहती है, पर इन घटकों एवं उपकरणों में से एक सुन्दर भवन खड़ा करना शिल्प या कथानक है। कथ्य को कैसे सर्वाधिक सार्थक, व्यंजित एवं सम्प्रेक्षित किया जाय, कथा का निर्वाह कैसे है, वह किस रूप में प्रस्तुत की जाय, देशकाल कथोपकथन आदि का उपयोग कहाँ और कितने परिमाण में हो, कथा कितनी प्रकथनात्मक रूप में, कितनी पात्रों के सम्वाद व कार्य द्वारा और कितनी पूर्वदीप्ति द्वारा कही जाय, यह सारी समस्याएँ कथा के शिल्प या

कथानक से सम्बंधित हैं। उपन्यास की मौलिकता भी इसी पर आधारित है। ''बहुधा कथानक की व्याख्या करते समय यह कहा जाता है कि कथानक विविध घटनाओं या कार्य–कलापों के संकलन या संचयनमात्र को कहते हैं।''[4]

3. **पात्रः** कथानक के पश्चात् उपन्यास का तृतीय महत्वपूर्ण अंग चरित्र या पात्र है। कथा की कल्पना में ही पात्रों की विषमानता है। पात्रों के क्रिया–कलापों से ही कथावस्तु का निर्माण होता है। उपन्यासकार को जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करना है। अतः वह ऐसे पात्रों का निर्माण करता है जो हमारे आसपास की दुनिया के हैं। उपन्यास के पात्रों में स्वाभाविकता का गुण होना चाहिए। महान से महान व्यक्ति में भी कुछ मानवीय कमजोरियाँ रहती हैं और निकृष्ट से निकृष्ट व्यक्ति में भी कुछ अच्छाईयाँ होती हैं। अतः उपन्यासकार को चाहिए कि वह इस मानवीय सत्य एवं वैचित्र्य का सफल उद्‌घाटक बने।

ई.एम. फॉस्टर ने लिखा है – ''उपन्यास की विशेषता है कि लेखक अपने पात्रों के विषय से बात कर सकता है। उसी प्रकार उनके द्वारा उनकी वार्ता के समय हमारे सुनने का आयोजन भी कर सकता है। वह आथ्मश्लाधा को छू सकता है और स्तर से वह गहराई में जाकर उप–चेतना का संसर्ग पा सकता है। वह उपचेतना के मँडराते अस्तित्व को सीधे व्यापार में ला सकता है। (नाटककार भी ऐसा कर सकता है।)''[5]

4. **कथोपकथनः** पात्रों के परस्पर के वार्तालाप को कथोपकथन कहते हैं। उसका सम्बंध कथावस्तु तथा पात्र दोनों से है। जो वार्तालाप कथानक को अग्रसर नहीं करता या चरित्र पर प्रकाश नहीं डालता वह चाहे कितना भी सजीव क्यों न हो, उपन्यास में उसका मूल्य दो कौड़ी का भी न होगा। उपन्यास के इसी तत्व के कारण ही उसे जेबी–थियेटर कहा गया है। इसके कारण उपन्यास में सहजता एवं स्वाभाविकता आती है।

5. **देशकाल या वातावरणः** देशकाल या वातावरण का चित्रण उपन्यास की वास्तविकता में वृद्धि करता है। मनुष्य बहुधा देशकाल की उपज होता है। गुजरात में हिसाबी के लिए 'अमदावादी' और

मनमौजी या रंगीले व्यक्ति के लिए 'सूरतीलाला' शब्द प्रयोग होता है। स्थल की भाँति काल या समय भी व्यक्ति के वैचारिक धरातल को प्रकाशित करता है। सामन्तकालीन व्यक्ति का चिंतन गांधीवादी का नहीं हो सकता। अतः उपन्यास में भी देशकाल का महत्व बढ़ जाता है।
डॉ. गुलाबराय ने लिखा है – ''देशकाल के चित्रण में सदा इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि वह कथानक के स्पष्टीकरण का साधन ही रहे, स्वयं साध्य न बन जाय। जहाँ देश–काल का वर्णन अनुपात से बढ़ जाता है, वहाँ उससे जी ऊबने लगता है, लोग जल्दी–जल्दी पन्ने पलटकर कथा सूत्र को ढूँढने लग जाते हैं। देशकाल का वर्णन कथानक को स्पष्टता देने के लिए होना चाहिए न कि उसकी गति में बाधा डालने के लिए। .... देशकाल वातावरण का बाहरी रूप है। वातावरण मानसिक भी हो सकता है। आदमी जिस प्रकार के समाज में रहता है वैसा ही वह काम भी करने लग जाता है। प्राकृतिक चित्रण भी उद्दीपन रूप से पात्रों की मानसिक स्थिति या मूड़ को निश्चित करने में सहायक होते हैं। प्रकृति और पात्रों की मानसिक स्थिति का सामंजस्य पाठक पर अच्छा प्रभाव डालता है और उपन्यास में काव्यत्व भी ले आता है, जैसे किसी के मरते समय दीपक का बुझ जाना, सूर्य का अस्त हो जाना अथवा घड़ी का बंद हो जाना वातावरण में अनुकूलता उत्पन्न कर शब्दों को एक विशेष शक्ति प्रदान कर देता है।''[6]

6. **विचार और उद्देश्यः** कोई भी उपन्यास स्पष्ट विचार, उद्देश्य या जीवन दृष्टि को केन्द्र में रखकर लिखा जाता है। प्रारम्भ में हिन्दी के उपन्यास मनोरंजन, उपदेशवादिता एवं समाज–सुधार को ध्यान में रखकर लिखे गये थे। परन्तु बाद में यथार्थवादी तथा अन्य कई प्रकार के उपन्यास लिखे गये।

उपन्यास के उद्देश्य पर विचार करते हुए डॉ. श्यामसुन्दर दास ने लिखा है, ''उपन्यासों में मुख्यतः यही दिखाया जाता है कि पुरुषों और स्त्रियों के विचार भाव और पारस्परिक सम्बंध कैसे हैं, वे किन–किन कारणों अथवा प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर कैसे–कैसे कार्य करते हैं; अपने प्रयत्नों में वे किस प्रकार सफल अथवा विफल होते हैं; और इन सबके फलस्वरूप उनमें कैसे–कैसे मनोविकार आदि उत्पन्न हाते हैं। उपन्यास लेखक का जीवन के किसी एक अथवा अनेक अंगों के साथ बहुत ही घनिष्ठ सम्बंध होता है। इसलिए किसी न किसी रूप में यह प्रकट करना उसका कर्तव्य हो जाता

है कि जीवन के साधारण और असाधारण सभी व्यापारों का उस पर क्या और कैसा प्रभाव पड़ा है। कुछ विशेष सिद्धांतों अथवा विचारों के प्रतिपादन के उद्देश्य से तो बहुत ही कम उपन्यास लिखे जाते हैं, पर सभी उपन्यासों में कुछ न कुछ विशेष विचार अथवा सिद्धांत आप से आप आ जाते हैं।''[7]

7. **शैली**: उपन्यास में सामाजिक एवं ऐतिहासिक तथ्यों को शैली के द्वारा बोध कराया जाता है। अतः उसमें प्रसाद गुण का प्राधान्य होता है। वैसे प्रसंगानुरुप ओज एवं माधुर्य का सन्निवेश भी हो सकता है। कथा के प्रभाव एवं तीव्रता लाने के लिए लक्षणा व्यंजना शक्तियों का प्रयोग भी हो सकता है। मुहावरे एवं लोकोक्तियों के प्रयोग से उपन्यास की भाषा सहज एवं वास्तविक रूप धारण करती है। इस क्षेत्र में प्रेमचन्दजी ने कमाल की सिद्धि हासिल की थी। कई प्रकार की शैलियाँ हैं जिनका प्रयोग उपन्यासकार अपने उपन्यास के अनुसार कर लेते हैं।

कहावतें, मुहावरे, लोकोक्तियाँ तथा भाषा का बदलता स्वरूपः

भारतीय परम्परा में 'कवि' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थो में होता है। सभी विधाओं के साहित्यकार इस 'संज्ञा' के अन्तर्गत समाहित हैं। अतः उपन्यासकार कवि भी हैं और कवि शब्द–ब्रह्म का उपासक होता है। उसकी साधना शब्दों की साधना है। उसके लिए एक सार्थक शब्द की खोज का आन्नद हजारों रुपयों की प्राप्ति के आन्नद से अधिक है। शब्द और अर्थ का समान महत्व केवल काव्य या साहित्य में ही उपलब्ध होता है। दूसरे विषयों में केवल अर्थ को प्राधान्य दिया जाता है। जिस तरह चित्रकार और संगीतकार के लिए जो महत्व क्रमशः रंग एवं स्वर का है, कुछ वैसा ही महत्व साहित्यकार के लिए शब्द का है। उपन्यास में भाषा, शिल्प या शब्द सौन्दर्य से मतलब नहीं, केवल 'फैक्ट' पकड़ में आना चाहिए, भाषा कैसी भी हो। वस्तु, चरित्र एवं परिवेश के निर्माण में भाषा का विशिष्ट योग रहता है।

भाषा का प्रयोग किस तरह और कहाँ किया जाता है, वह निम्नलिखित हैः

1. **वस्तु–निर्माण में भाषा का योगः** उपन्यास में वस्तु के अनुरुप शब्दों का प्रयोग होता है। कविता में छंद और लय के आग्रह के कारण कवि अनेक बार बंध जाता है। किन्तु उपन्यासकार को उन्मुक्त प्रयोग की पूरी–पूरी सुविधा रहती है। सामाजिक, ऐतिहासिक, व्यंग्यमूलक प्रभृति कथा–वस्तु की

नाना मुद्राएँ अपनी प्रवृत्ति के अनुरुप भाषा को यथेष्ट आकार देती हैं। आधुनिक प्रगतिशील लेखिका कृष्णा सोबती जी के उपन्यास 'मित्रो मरजानी' में प्रकृति को सम्बोधित करते हुए माँ का वर्णन किया है – ''सात नदियों की तारु तवे सी काली मेरी माँ और मैं गोरी चिट्टी उसके कोख पड़ी।''[8] ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं।

(ब) **चरित्रोद्घाटन में भाषा का योग**: व्यक्ति के चरित्र का निर्माण संस्कार, शिक्षा एवं परिवेश से होता है और उसी के अनुरुप उसकी भाषा भी होती है। अतः कोई चाहे कैसा भी मुखौटा धारण करे, उसकी भाषा कहीं न कहीं किसी न किसी प्रकार वास्तविकता को उद्घाटित कर ही देती है। जैसे 'मित्रों मरजानी' का यह कथन – ''मेरा वश चले तो गिनकर सौ कौरव जन डालूँ, पर अम्मा अपने लाडले बेटे का भी तो हाड़–तोड़ जुटाओ। निगोड़े मेरे पत्थर के बूत में भी कोई हरकत तो हो।''[9] अतः इससे पता चलता है कि मित्रो का लालन–पालन एक गंदे वासनाग्रस्त वातावरण में हुआ है।

(स) **परिवेश निर्माण में भाषा का योग**: व्यक्ति या चरित्र की भाँति परिवेश की भी अपनी एक भाषा होती है। ग्रामीण परिवेश की भाषा नगरीय परिवेश की भाषा से भिन्न होती है। ग्रामीण परिवेश की भाषा में भी क्षेत्रीयता के आधार पर अंतर आता है। नगरीय परिवेश की भाषा में उच्च–वर्ग, मध्यवर्ग और निम्न वर्ग के परिवेश की भाषा के विभिन्न स्तर मिलते हैं। गाँव के लोगों की भाषा में लोकभाषा के शब्द, कहावतें, मुहावरे मिलते हैं। उनके उपमान भी उनकी अपनी जिन्दगी से चुने हुए होते हैं। इसी प्रकार अंधेरे बंद कमरे, रुकोगी नहीं राधिका? आदि उपन्यास आधुनिक शिक्षित नगरीय परिवेश पर आधारित हैं। अतः उनके उपमान प्रतीक, बिम्ब आदि भी उनके परिवेश की उपज हैं। ''चुम्बन के लिए होठों का फोटोग्राफ''[10], 'जीवन के लिए लम्बी अंधकारपूर्ण सुरंग की निरुद्देश्य यात्रा''[11]

शब्दविचारः

शब्द भाषा की लघुत्तम सार्थक इकाई है। अतः भाषा–शैली के संदर्भ में शब्द–चयन का महत्व असंदिग्ध है। कथाकार वस्तु, चरित्र एवं परिवेश के अनुरुप शब्दों का चयन करता है। अन्यथा उपन्यास अपनी वास्तविकता खो देता है। क्षेत्रीय प्रभाव का भी एक विशिष्ट महत्व है। जैसे पंजाबी माँ अपने बेटे को

'पुत्र' या 'पुत्तर' कहकर बुलाती है। उसी प्रकार 'रंडी' या 'रांड' शब्द का प्रयोग कुछ क्षेत्रों में गाली के रूप में प्रचलित है, परंतु पंजाब में विधवा के लिए सामान्यतया इस शब्द का प्रयोग होता है।

कुछ उपन्यासों में देहाती और क्षेत्रीय शब्द–प्रयोग तथा अंग्रेजी के कुछ अपभ्रंश उपलब्ध होते हैं। उर्दू और अरबी–फारसी के शब्दों से हमारा पुराना नाता है। प्रेमचन्द की भाषाशैली ने तो उसे और भी घरेलू रूप दिया है। हिन्दी के सभी उपन्यासकारों ने आवश्यकतानुसार उर्दू शब्द का प्रयोग किया है। उर्दू की भाँति अंग्रेजी भी हमारी भाषा में रच–बस गयी है। देहाती और अनपढ़ लोगों तक उसके शब्द पहुंच चुके हैं। प्रायः सभी आधुनिक नगरीय परिवेश के उपन्यासों ने अंग्रेजी के शब्द ही नहीं, बल्कि कहीं–कहीं पुरे–पुरे वाक्य अंग्रेजी में उपलब्ध हैं। गाँवों की बोली में गालियों का प्रयोग कहावत–मुहावरों की भाँति होता है। जैसे – मित्रों मरजानी – कंगले राकस, गर्क जानों, मुहं झोंसी, मरजानी, नासहोनों।

चर्चित उपन्यासों में आये हुए संस्कृत शब्दः

भारतीय भाषाओं का जन्म संस्कृत से हुआ है। अतः उसके शब्द प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में उपलब्ध होते हैं। संस्कृत के कुछ शब्द तो अत्यधिक प्रचलित हैं किन्तु आजकल अंग्रेजी, हिन्दी तथा कई अन्य भाषाओं के प्रचलन से संस्कृत का प्रयोग प्रायः कम होने लगा है। संस्कृत भाषा पूरी तरह से खत्म न हो जाए इसलिए कई बार संस्कृत शब्दों का जान–बूझकर प्रयोग किया जाता है। उषा प्रियंवदा के उपन्यास 'रुकोगी नहीं राधिका?' में गृहस्थिन शब्द में उर्दू का 'नुमा' प्रत्यय जोड़कर 'गृहस्थिनुमा' शब्द बनाया है।

आलोच्य उपन्यासों में प्रयुक्त अंग्रेजी शब्दः

लगभग दो सौ वर्ष से शासकीय भाषा के रूप में अंग्रेजी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात् भी अंग्रेजी भाषा में वृद्धि हुई है। फलतः उच्च वर्गीय शिक्षित नौकरीशुदा वर्ग में दैनन्दिनी भाषा के रूप में अंग्रेजी का प्रचलन बढ़ रहा है। विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी के विकास तथा उससे उत्पन्न साधन–सुविधाओं में भी अनेक अंग्रेजी शब्द प्रयोग हुए हैं। कई बार हम हमारी भाषा में हिन्दी से ज्यादा अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करते हैं। अतः नगरीय परिवेश के उपन्यासों में अंग्रेजी शब्दों का आना स्वाभाविक है। मोहन राकेश के 'अंधेरे बद कमरे' में सैंकडो अंग्रेजी शब्दो तथा वाक्यों का प्रयोग किया है। हरबंश की साली

शुक्ला के सम्बंध में उपन्यास का एक पात्र भद्रसेन कहता है – ''शी रेडिएट्स ब्यूटी''।

''क्यूबिज़्म, सी–सीकनेस, स्केण्डल, वेल्यू, ओल्डस्मोबाइल, स्पोयल करना, एमेच्योर, नयी कांशसनेस, सेंसिटिविटी, ट्रांक्विलाइजर, एडोलसेंट''[12] आदि।

'रुकोगी नहीं राधिका?', 'पचपन खम्भे लाल दीवारें', 'आपका बण्टी' आदि उपन्यासों में भी अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग अधिक मात्रा में हुआ है, जैसे–

रुकोगी नहीं राधिका? : इलेक्ट्रा काम्पलेक्ष, नर्वस ब्रेक डाउन, लेडी ऑफ लेजर, प्लैस्टीसीन, रिवर्स, कल्चरल शाक, अक्वाबीत (शराब), उण्टिगोनम (लता), एबनॉर्मल, फारिन–रिटर्न।

पचपन खम्भे लाल दीवारें : सैक्स–स्टार्व्ड, अनड्यू एडवाण्टेज

आपका बण्टी : एज–प्रूफ, लूडो, गिल्टी महसूस करना, जस्टिफाई करना, पजेसिव, इगोइस्ट, सबमिसिव, प्रोब्लम, इनहेरिट करना, टार्चर करना, प्रिल महसूस करना, इन्ट्रोवर्ट

नरक–दर–नरक : एज ए टीचर, सिन्सियर, नोटस्, 'समर इंस्टिट्यूट'।[13]

पंजाबी के शब्दः

कृष्णा सोबती के उपन्यास 'मित्रो मरजानी का तो नाम ही पंजाबी लढ़ण (ढंग) का है। लेखिका ने उसमें अनेक पंजाबी शब्दों का सार्रास प्रयोग किया है। जैसे – ''जेठाभाई (बड़ा भाई), घनी रात गई, बहनेली, लीढ़ें, जोतोंवाली, ढुक, लाड़ो, तरीमत, फिक्रों में डूबा, तेग, नास–होनों (गाली), भावो, गुरली, सारी नगरी, ढिब, मुँह जोंसी (गाली), ढोलजानी।''[14]

गुजराती तथा प्रान्तीय भाषाओं के शब्दः

हमारे कई उपन्यासों में गुजराती के अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है। गुजराती से मिलते–जुलते भी कई शब्द प्रयोग हुए हैं। जैसे – ''जेठाभाई (जेठा–छोकरा, छोकरी), घनी (घणी), दिहाड़ा (दहाड़ा), लाड़ो (लाड़ी)''[15] आदि।

कहावतें और मुहावरेः

''लोक–जीवन के समुद्र मथन से जो रत्न प्राप्त होते हैं कहावतें उनमे से एक हैं। यों तो कहावत

लोकोक्ति का एक प्रकार हैं, किन्तु संकुचित अर्थो में अब उसे कहावत का पर्यायवाची समझा जाता है। लोकोक्ति में गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति काम करती है। इसमें जीवन के सत्य बड़ी खूबी से प्रकट होते हैं। यह ग्रामीण जनता का नीतिशास्त्र है। लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिनमें बुद्धि और अनुभव की किरणें फूटनेवाली ज्योति प्राप्त होती है। सांसारिक व्यवहार–पटुता और सामान्य बुद्धि का जैसा निदर्शन कहावतों में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।[16]

कहावत की भाँति मुहावरे भी जन–जीवन से प्रकट होते हैं। ऐसा वाक्यांश जो सामान्य अर्थ का बोध न कराकर किसी विलक्षण अर्थ का बोध कराते हैं वे मुहावरे कहलाते हैं। रामचन्द्र वर्मा ने कहावत और मुहावरों के अंतर को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''मुहावरों का प्रयोग तो वाक्यों के अन्तर्गत उनका सौन्दर्य बढ़ाने और उनमें उपयुक्त प्रवाह लाने के लिए होता है और कहावतों का प्रयोग बिलकुल स्वतंत्र रुप से और किसी विषय को केवल स्पष्ट करने के लिए। मुहावरा यदि वाक्य से निकाल दिया जाए तो उससे बहुत कुछ शोभा जाती रहती है। पर कहावतें निकाल देने पर प्रायः ऐसा नहीं होता।''[17] ग्रामीण परिवेश पर आधारित उपन्यासों में कहावतें और मुहावरे विपुल परिमाण में पाये जाते हैं। ये कहावतें और मुहावरे लोगों के दैनन्दिन जीवन, अनुभव एवं परिवेश से जुड़े हुए होते हैं। कोई भी साहित्यकार अपने जन–जीवन और मिट्टी से कितना जुड़ा हुआ है, उसकी परीक्षा उसके साहित्य में उपलब्ध होने वाली कहावतों और मुहावरों से हो जाती है।

	कहावत	**उपन्यास**	**पृ. संख्या**
1.	कही तेंदुए अपने धब्बे बदल सकते हैं (अंग्रेजी कहावत)	रुकोगी नहीं राधिका	134
2.	खाड़ का बताशा और नून का डला घुलकर ही रहेगा	मित्रो मरजानी	52
3.	जहां बिराजे शिवजी वहां उनकी पार्वती	मित्रो मरजानी	91

	मुहावरे	**उपन्यास**	**पृ. संख्या**
1.	इमरती बन जाना	मित्रो मरजानी	51
2.	घर के भांडे ही बुरे	मित्रो मरजानी	12
3.	तुम्हारे मुंह गुलाब	मित्रो मरजानी	103
4.	दूसरे के फटे में पैर अड़ाना	पचपन खम्भे लाल दीवारें	30
5	मलाई देख मुंह मारने आना	मित्रो मरजानी	21

नयी अभिव्यंजना – नया शिल्पः

आज का नया कथा–साहित्य न केवल अपने वस्तु एवं परिवेश में नवीन जमीन को तोड़ता है अपितु अभिव्यंजना के नये क्षितिजों को उद्घाटित करते हुए शिल्प एवं शैली के नवीन कोणों एवं सम्भावनाओं को उकेरता है। आज का साहित्यकार न पुराने प्रतीकों, बिम्बों से प्रेरित रहता है बल्कि आधुनिक जीवन, उसके नवीन प्रकार के उपकरण तथा उसके भावबोध का वह अत्यंत निकटवर्ती दृष्टा व भोक्ता है। अतः उसका अप्रस्तुत कल्पना–विधान आधुनिक जीवन की गतिविधियों एवं ज्ञान की अन्तरिम (लेटेस्ट) जानकारियों को भी ग्रहित करता है। वह देश के कोने–कोने की गतिविधियों को विश्लेषित करता है। अतः आधुनिक कथा साहित्य को ठीक प्रकार से समझने के लिए उसके उपमानों, अप्रस्तुतों एवं नवीन मौलिक बिम्बों को समझना आवश्यक है।

क्रम	उपमेय	उपमान	उपन्यास	पृष्ठ
1.	(प्रियजन से) अलग होने के बाद जीवित रहना	राख के ढके कोयलों पर पलना	पचपन खम्भे लाल दीवारें	125
2.	जीवन	लम्बी अंधकारपूर्ण सुरंग की निरुद्देश्य यात्रा	रुकोगी नहीं राधिका	114
3.	दिल	कबूतर	मित्रो मरजानी	101

संवादः पात्रों के परस्पर के वार्तालाप को संवाद कहा जाता है। इसका सम्बंध कथा–वस्तु तथा पात्र दोनों से है। संवाद ऐसा होना चाहिए जो कथानक को अग्रसर करे, उसके चरित्र पर प्रकाश डाले। पात्रों के संवाद से हम उनकी भावभूमि एवं परिवेश से परिचित होते हैं। पात्रों के वार्तालाप में हमें उनके दैनिक जीवन की झलक मिलती है। भाषा–शैली जाति तथा प्रदेश आदि की विशेषताएँ वार्तालाप द्वारा ही प्रकट होती है। और इन विशेषताओं से वार्तालाप का वास्तविक निर्माण होता है।

1. ''पैंतालीस साल की आयु में मैं भी एक कुत्ता या बिल्ली पाल लूँगी.. उसे सीने से लगा रखूँगी.. आज से सोलह साल बाद शायद तुम अपनी बेटी को लेकर इसी कॉलेज में आओ, तब भी तुम मुझे यहीं पाओगी। कॉलेज के इस पचपन खम्भों की तरह स्थिर अचल।''[18]

2. पचपन खम्भों की तरह सुषमा के जीवन के खम्भे भी निश्चित ही हैं। कॉलेज बिल्डींग के रंग की भाँति उसके जीवन का भी एक ही रंग होगा। कमाना और कमाकर पैसे घर भेजना। सुषमा की इस निराशा का चित्रण इन शब्दों में हुआ है। ''जीवन की भागदौड़ और आजीविका के प्रश्नों में चुपचाप विलीन हो गये दो वर्ष और अब तो उसके चारों ओर दीवारें खिंच गई थीं, दायित्व की, कुण्ठाओं की, अपने पद की गरिमा और परिवार की। ... कभी–कभी उसका मन न जाने क्यों डूबने लगता। अपने परिवार का सारा बोझ अपने ऊपर लिए सुषमा कांपने लगती। तब वह चाह उठती कि दो बाहें उसे भी सहारा देने को हों। इस नीरवता में कुछ अस्फुट शब्द उसे भी सम्बोधन करें।''[19]

कृष्णा सोबती के उपन्यास मित्रो मरजानी में मित्रो का लालन–पालन एक गंदे वासनाग्रस्त वातावरण में होता है। मित्रो की माँ भी आवारा, बदचलन औरत थी जिसका अनेक पुरुषों से शारीरिक संबंध था। एक स्थान पर मित्रो अपनी जिठानी सुहागवंती को अपनी माँ के सम्बंध में बताती है –

1. ''सात नदियों की ताऊ तवे सी काली मेरी माँ और मैं गोरी चिट्टी उसके कोख पड़ी। कहती है इलाके के बड़भागी तहसीलदार की मुहदरा है मित्रो। अब तुम्हीं बताओ जिठानी, तुम जैसा सतबल कहाँ से पाऊँ–लाऊँ? देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता। बहुत हुआ हफ्ते–परखवारे... और मेरी इस देह में इतनी प्यास है, इतनी प्यास है कि मछली सी तड़पती हूँ।''[20]

2. मित्रो अपनी वाचलता में छोटे–बड़ों का भी लिहाज नहीं रखती। एक स्थान पर वह अपनी सास को खरी–खरी सुनाते हुए कहती है –''मेरा वश चले तो गिनकर सौ कौरव जन डालूँ, पर अम्मा अपने लाड़ले बेटे का भी तो हाड़तोड़ जुटाओ। निगोड़े मेरे पत्थर के बूत में भी कोई हरकत तो हो।''[21]

संवादः यह कथानक का विकास करता है और पात्रों के चरित्र–चित्रण में सहायक होता है। संक्षेप में उपन्यास में निम्नलिखित उद्देश्यों से संवादों का समावेश होता है।

(1) कथानक का विकास करनाः

संवादों के द्वारा उपन्यासकार अपनी कृति में वर्णित घटनाओं या दृश्यों में सजीवता लाता है और उनके संगठन से कथानक का विस्तार करता है। अनावश्यक और अपेक्षित रूप से विस्तृत तथा

अरोचक संवाद इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर पाते। संवाद को प्रत्यक्षतः कथानक के सूत्र से संबंधित होना चाहिए क्योंकि यदि ऐसा नहीं होगा तो संवाद की पारस्परिक क्रमबद्धता नष्ट हो जाएगी और उसकी विविध घटनाओं में किसी प्रकार के सामंजस्य के अभाव में असंगति जान पड़ने लगेगी।

(2) **पात्रों की व्याख्या करनाः** उपन्यास में संवादों का संबंध कथानक और पात्रों से समान रूप से महत्वपूर्ण होते हुए भी पात्रों से विशेष होता है। पात्रों के संवादों के माध्यम से, जो विचार प्रकट होते हैं, वे ही पाठक को उनके प्रति नैकट्य का अनुभव करने देते हैं। संवादों के द्वारा उपन्यासकार पाठकों को अपने पात्रों के विषय में विविध जटिल परिस्थितियों तथा अन्तर्द्वन्द्व संबंधी इतना प्रत्यक्ष बोध कराता है, जो अन्य किसी माध्यम से संभव नहीं है। संवादों के द्वारा उपन्यासकार अपनी कृति के चरित्रों की व्याख्या करता है और उन्हें विकास की ओर अग्रसर करता है।

(3) **लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करनाः**

संवाद लेखक के उद्देश्य को प्रकट और स्पष्ट करता है। बहुत से स्थलों पर लेखक अपनी बात को पाठकों के माध्यम से कहलाना चाहता है, वहाँ संवाद ही उसके सहायक होते हैं।

उपर्युक्त उद्देश्यों के अतिरिक्त उपन्यास में संवादों के प्रयोग से अन्य भी बहुत से उद्देश्यों की पूर्ति होती है। उदाहरण के लिए संवाद की सहायता से उपन्यासकार अपने इच्छित वातावरण की सृष्टि कर सकता है, जिसके लिए वह अन्य किसी माध्यम का आश्रय नहीं लेना चाहता।

संवाद के गुणः

संवादों की सफलता तभी सम्भव है, जब वह आवश्यक गुणों से युक्त हों। उपयोगिता की दृष्टि से संवादों के निम्नलिखित गुण बताये जा सकते हैंः

1. **उपयुक्तताः** संवाद का सर्वप्रथम गुण उसकी उपयुक्तता है। यदि एक ओर उपयुक्त संवाद किसी विशेष स्थल पर चमत्कार की सृष्टि कर सकता है तो दूसरी ओर अनुपयुक्त संवाद उसमें दोष उत्पन्न कर सकता है। इसलिए उपन्यासकार संवाद को चमत्कार सृष्टि का महत्वपूर्ण माध्यम मानकर

उसका उपयोग करता है। संवाद का उपन्यास की घटना, अवसर तथा वातावरण के उपयुक्त होना बहुत आवश्यक है।

2. **अनुकूलताः** संवाद का उद्देश्य कथानक का विकास तथा पात्रों का चित्रण करना है। इसीलिए उसके उपर्युक्त गुण, उपयुक्तता का संबंध घटना–औचित्य से है। परंतु चूँकि वह पात्रों का चित्रण भी करता है, इसलिए यह आवश्यक है कि वह विविध पात्रों के स्वभाव के अनुकूल हो, अन्यथा उनके चरित्र विकास की दृष्टि से उसका महत्व नहीं होगा। यदि एक ओर संवादों का पात्रों के स्वभाव से वैषम्य नहीं होना चाहिए तो दूसरी ओर उसे पात्रों के सामाजिक, बौद्धिक और सांस्कृतिक स्तर के अनुकूल भी होना चाहिए।

3. **सम्बद्धताः** संवाद का एक गुण सम्बद्धता भी है। इसके अनुसार संवाद के माध्यम से उपन्यासकार जिन बातों को कह रहा हो, या कहना चाहता हो, उनमें कथानक तथा पात्रों से किसी न किसी प्रकार का पारस्परिक संबंध अवश्य होना चाहिए। यों उपन्यास में रोचकता की सृष्टि के लिए स्वतंत्र संवाद का भी स्थान होता है, परन्तु विशेष बात यही है कि संवाद का विषय प्रासंगिक नहीं होना चाहिए।

4. **स्वाभाविकताः** संवादों का समावेश उपन्यास में स्वाभाविक रूप से और आवश्यकता के अनुसार होना चाहिए। ऐसा नहीं प्रतीत होना चाहिए कि कोई संवाद जबरदस्ती उपन्यास में समावेशित किया गया है। संवादों में यह गुण तभी आ सकता है जब उसका विषय कृत्रिम या गढ़ा हुआ न हो। घटना–स्थल पर सहसा अनेक आवश्यक–अनावश्यक पात्रों का इकट्ठा हो जाना और टालू वार्तालाप उसमें स्वाभाविकता नहीं आने दे सकता।

5. **संक्षिप्तताः**

कथोपकथन या संवादों का संक्षिप्त होना उसकी प्रभावात्मकता में वृद्धि करता है। लम्बे संवाद अस्वाभाविक और ऊब पैदा करने वाले होते हैं। छोटे संवाद परिस्थितियों का परिचय देने की दृष्टि से अधिक सफल सिद्ध होते हैं।

6. **उद्देश्यपूर्णता:** उपन्यास में संवादों का सही मतलब निकलना चाहिए। वह सौदेश्यपूर्ण होना चाहिए। उद्देश्यरहित संवाद फीके और अनावश्यक प्रतीत होते हैं। वास्तव में संवादों को या तो पात्रों के चरित्र का चित्रण करना चाहिए और या कथानक के विकास में सहायक होना चाहिए। इसलिए संवाद को या तो किसी पात्र की किन्हीं विशेष परिस्थितियों में मानसिक प्रतिक्रिया को मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत करना चाहिए और या घटना विषयक जटिलताओं का परिचय देना चाहिए।

इनके अतिरिक्त एक और उद्देश्य संवाद की सृष्टि के पीछे हो सकता है। संवादों के द्वारा यह भी दिखाया जा सकता है कि एक उपन्यास के दो विरोधी पात्र किस प्रकार एक--दूसरे के मन की थाह लेने का प्रयत्न करते हैं। संवाद का उद्देश्य किसी विशेष स्थल पर किसी महत्वपूर्ण शुभ या अशुभ भावी घटना का पूर्व संकेत भी हो सकता है।

* * * * *

संदर्भिका

1 हिन्दी उपन्यास में कथा–शिल्प का विकास : डॉ. प्रतापनारायण टंडन, हि. विभाग, लखनऊ वि वि

2. आस्पैक्ट्स ऑफ दि नाविल : ई.एम. फॉस्टर, पृ. 35

3. कुछ विचार : प्रेमचन्द, पृ. 85–86

4. साहित्य का साथी : डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. 90

5. आस्पैक्ट्स ऑफ दि नाविल : ई एम. फॉस्टर, पृ 40

6. काव्य के रूप : डॉ. गुलाबराय, पृ. 187

7 साहित्यालोचन : डॉ श्यामसुन्दरदास, पृ. 175

8. मित्रों मरजानी : कृष्णा सोबती, पृ 20

9. मित्रों मरजानी : कृष्णा सोबती, पृ. 84

10. अंधेरे बंद कमरे : मोहन राकेश, पृ 273

11. रूकोगी नहीं राधिका? : उषा प्रियंवदा, पृ. 114

12 अधेरे बंद कमरे : मोहन राकेश, पृ 101, 273, 16, 112, 148, 286, 291, 289, 292, 292, 365, 376

13 रूकोगी नहीं राधिका? : उषा प्रियंवदा, पृ 56, 80, 87, 102, 112, 113, 147, 33, 83, 84
पचपन खम्भे लाल दीवारें : पृ 8, 52
आपका बण्टी : मन्नू भण्डारी, पृ. 53, 54, 116, 122, 122, 122, 123, 2, 3, 150, 201
नरक दर नरक : ममता कालिया : पृ. 48

14 मित्रो मरजानी : कृष्णा सोबती, 13, 16, 28, 29, 19, 26, 30, 39, 50, 64, 66, 68, 80, 89, 204

15. मित्रो मरजानी : कृष्णा सोबती, पृ. 13, 17, 22, 30

16 हिन्दी साहित्यकोश भाग–1, पृ. 754

17 अच्छी हिन्दी : रामचन्द्र वर्मा, पृ. 170

18. पचपन खम्भे लाल दीवारे : उषा प्रियंवदा, पृ. 109, 110

19. पचपन खम्भे लाल दीवारें : उषा प्रियंवदा, पृ. 31–32

20. मित्रो मरजानी : कृष्णा सोबती, पृ. 20

21 मित्रो मरजानी : कृष्णा सोबती, पृ. 84